पशुओं के वर्षाकालीन संक्रामक रोगों की रोकथाम

1. खुरपका-मुंहपका रोग
    i. लक्षण
    ii. उपचार
2. बाह्य परजीवी
    i. बचाव के उपाय
    ii. सावधानी
    iii. टीकाकरण
3. गलघोंटू
    i. लक्षण
    ii. उपचार
    iii. रोकथाम/बचाव
4. थनैला रोग
    i. लक्षण/जांच
    ii. रोकथाम/बचाव
5. लंगड़िया
    i. लक्षण
    ii. उपचार
    iii. रोकथाम/बचाव
6. पशुओं में लीवर-फ्लूक
    i. लक्षण
    ii. उपचार
7. पशुओं में डेगनाला रोग
    i. लक्षण
    ii. रोकथाम/बचाव

पशुपालकों को पशु स्वास्थ्य से संबंधित जानकारियां न होने के कारण उन्हें अक्सर बड़े पैमाने पर नुकसान उठाना पड़ता है। देश में पशु चिकित्सा सेवाओं की समुचित व्यवस्था के अभाव के अलावा जागरूकता नहीं होने से भी यह स्थिति बन जाती है। यहां पर बरसात के दिनों में पशुओं में होने वाले सामान्य रोगों के लक्षण एवं उनसे बचाव के तौर-तरीकों पर अत्यंत सरल भाषा में जानकारियां देने का प्रयास किया गया है।

खुरपका-मुंहपका रोग

यह एक विषाणुजनित रोग है, जो फटे खुर वाले पशुओं को ग्रसित करता है। इसकी चपेट में सामान्यतः गौपशु, भैंस, भेड़, बकरी एवं शूकर आते हैं। यह छूत का रोग है।

पशुओं में मुंहपका रोग

लक्षण

प्रभावित होने वाले पशुओं में पैर पटकना, खुर में सूजन, लंगड़ाना, अल्प अवधि का बुखार, खुर में घाव होना एवं घावों में कीड़ा लग जाना, कभी-कभी खुर का पैर से अलग हो जाना, मुंह से लार गिरना जैसे लक्षण पाए जाते हैं। जीभ, मसूड़े, ओष्ठ आदि पर छाले पड़ जाते हैं। ये बाद में फूटकर मिल जाते हैं। इसके अलावा प्रजनन क्षमता और बैलों की कार्य क्षमता में कमी भी आती है। बछड़ों में यह रोग घातक रूप ले लेता है, जिससे उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है। प्रभावित पशु स्वस्थ होने के उपरान्त भी महीनों हांफते रहते हैं। मादा पशुओं की प्रजनन क्षमता वर्षों तक प्रभावित रहती है। शरीर के रोयें तथा खुर बहुत बढ़ जाते हैं। गर्भवती मादा पशुओं में गर्भपात की आशंका बनी रहती है।

पशुओं में खुरपका रोग

उपचार

- रोगग्रस्त पशु के पैर को नीम का काढ़ा बनाकर दिन में दो से तीन बार धोना चाहिए। प्रभावित पैरों को फिनाइलयुक्त पानी से दिन में दो-तीन बार धोकर मक्खी को दूर रखने वाली मलहम का प्रयोग करना चाहिए।
- रोगी पशु के मुंह और खुर को फिटकरी के घोल (10 ग्राम पिफटकरी को 1 लीटर पानी में) अथवा लाल दवा (1 ग्राम को1 लीटर पानी में) के घोल से दिन में 3-4 बार धोना चाहिए।
- पशु के मुंह में दिन में 2-3 बार बोरोग्लिसरिन का लेप अवश्य करना चाहिए।
- खाने के लिए चावल का मांड, दलिया, गुड़ के साथ देना चाहिए। बारीक कुट्टी एवं अन्य चारा भी दिया जा सकता है।
- एंटीबायोटिक दवाओं का प्रयोग रोग के प्रभाव को कुछ हद तक कम कर देता है।

बाह्य परजीवी

मुख्यतया किलनियों, जूं, मक्खियों व माइट जैसे बाह्य परजीवियों के द्वारा भी कई प्रकार के रोग होते हैं। ये पशु का खून चूसते हैं जिससे खून की कमी व अन्य रोगों के हो जाने के कारण पशु उत्पादकता पर कुप्रभाव पड़ता है। बाह्य परजीवियों से ग्रसित पशु की खाल की कीमत भी बाजार में कम मिलती है। कभी-कभी पशु के शरीर में घाव भी हो जाते हैं, जिनमें मक्खियां अंडे दे देती हैं और कीड़े पड़ जाते हैं। घाव कई दिनों तक ठीक न हो पाने के कारण पशु के उपचार पर खर्च ज्यादा होता है और उत्पादकता भी प्रभावित होती है।

बचाव के उपाय

इन परजीवियों से बचाव के लिए वर्ष में कम से कम दो बार परजीवीनाशक दवाओं जैसे-साइपरमैथ्रिन, डेल्टामैथ्रिन आदि से पशुओं को नहलाना चाहिए। वर्षा ऋतु से पहले एवं बाद में दो बार इन परजीवीनाशक दवाओं का प्रयोग अत्यन्त प्रभावी होता है। साइपरमैथ्रिन या डेल्टामैथ्रिन के 0.1 से 0.4 प्रतिशत अर्थात एक लीटर पानी में 1 से 4 मिलीलीटर दवा मिलाकर घोल बना लें। इस घोल से पशु को नहलाना चाहिए। नहलाने से पूर्व पशुओं को पानी अवश्य पिला लेना चाहिए। ये दवायें जहरीली होती हैं अतः इनका उपयोग सतर्कता व सावधानी से करना चाहिए पशु चिकित्सक से पूर्व में सलाह लेने से किसी भी प्रकार की हानि से बचा जा सकता है। पशुशाला की प्रत्येक दिन साफ-सफाई करें और उसकी सतह पर चूने का छिड़काव करें। पुरानी बिछावन यदि हो तो उसे बदलते रहें।

सावधानी

प्रभावित पशु को साफ एवं हवादार स्थान पर अन्य स्वस्थ पशुओं से दूर रखना चाहिए। पशुओं की देखरेख करने वाले व्यक्ति को भी हाथ-पांव अच्छी तरह साफ करके ही दूसरे पशुओं के संपर्क में जाना चाहिए। प्रभावित पशु के मुंह से गिरने वाली लार एवं पैर के घाव के संसर्ग में आने वाली वस्तुओं, पुआल, भूसा, घास आदि को जला देना चाहिए या जमीन में गड्ढा खोदकर चूने के साथ गाड़ दिया जाना चाहिए।

टीकाकरण

'इलाज से बेहतर है बचाव' के सिद्धांत पर छः माह से ऊपर के स्वस्थ पशुओं को खुरपका-मुंहपका रोग के विरूद्ध टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए। इसके बाद छः माह के अंतराल पर टीकाकरण करवाते रहना चाहिए।

गलघोंटू

यह रोग हिमोरेजिक सेप्टीसिमिया के नाम से जाना जाता है। यह पास्चुरेला मल्टीसिडा नामक जीवाणु से होता है। यह रोग पशुओं में बरसात में होता है तथा भैंसों में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। अति तीव्र ज्वर के साथ प्रारंभ होने वाला गाय तथा भैंस आदि पशुओं को प्रभावित करने वाला जीवाणुजनित यह आम पशु रोग है, जो महामारी के रूप में फैलता है। किसी भी उम्र के पशु किसी भी मौसम में इससे ग्रस्त हो सकते हैं। बरसात के दिनों में इस रोग के फैलने की आशंका अधिक रहती है।

लक्षण

एकाएक सुस्ती, भूख तथा जुगाली बंद, तीव्र ज्वर (106-108^0 फारॅनेहाइट), तेज परन्तु धीमी सांस, मुंह से लार टपकना, आंख तथा अन्य श्लेष्मा झिल्लियों में लालीपन, आंसुओं का स्राव, सिर तथा गर्दन में दर्दयुक्त सूजन, जीभ बाहर निकालकर सांस लेना, सांस में घरघराहट, बेचैनी तथा अंत में मृत्यु इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।

मृत्यु दरः 70-100 प्रतिशत।

उपचार

रोग शुरुआती दौर में तीव्रता तथा पशु की स्थिति के अनुसा उचित एंटीबायोटिक्स के साथ सपोर्टिग औषधि द्वारा इलाज किए जाने पर संतोषजनक परिणाम मिलते हैं। धुआं करने की आम परिपाटी को रोकना चाहिए। इससे सांस लेने में कठिनाई बढ़ जाती है। गर्म बालू अथवा अन्य धुंआरहित सामग्री की पोटली बनाकर सूजन वाले भाग पर सेंकना चाहिए। पशु को ज्यादा छेड़छाड़ से बचाना चाहिए।

रोकथाम/बचाव

पशुशाला को साफ रखें। समय पर टीका लगवाएं। रोग से ग्रसित पशुओं को अलग रखें।

- ए.एस.आईल एड्ज्यूवेट वैक्सीन 6 माह के ऊपर की आयु के सभी पशुओं में लगवाना चाहिए। एच.एस. का टीकाकरण ही इस रोग से पशु की रक्षा कर सकता है।
- वर्षा ऋतु से पहले प्रतिवर्ष यह टीका लगवा लेना चाहिए।
- यह छूत का रोग है। रोगी पशुओं को तुरंत स्वस्थ पशुओं से अलग कर दें। उन्हें अलग से पानी व चारा देना चाहिए।
- मृत पशु को गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ दें।

थनैला रोग

थनैला रोग, पशुओं के थन के रोग को कहते हैं। यह रोग सामान्यतः गाय, भैंस, बकरी एवं सूअर समेत तकरीबन सभी ऐसे पशुओं में पाया जाता है, जो अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। प्राचीनकाल से यह रोग दूध देने वाले पशुओं एवं उनके पशुपालकों के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। पशुधन विकास की पूर्ण सफलता में अकेले यह रोग बाधक है। इस रोग से पूरे देश में प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का नुकसान होता है, जो अंततः पशुपालकों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करता है। थनैला रोग पशुओं में कई प्रकार कीटाणु, विषाणु, फफूंद एवं यीस्ट तथा मोल्ड के संक्रमण से होता है। इसके अलावा चोट तथा मौसमी प्रतिकूलताओं के कारण भी थनैला हो जाता है।

लक्षण/जांच

थनैला रोग से प्रभावित पशुओं में रोग के प्रारंभ में थन गर्म हो जाता है तथा उसमें दर्द एवं सूजन हो जाती है। शारीरिक तापमान भी बढ़ जाता है। लक्षण प्रकट होते ही दूध की गुणवत्ता प्रभावित होती है। दूध में छटका, खून एवं पस की अधिकता हो जाती हैं। पशु खाना-पीना छोड़ देता है एवं अरुचि से ग्रसित हो जाता है।

कभी-कभी थैनेला रोग के लक्षण प्रकट नहीं होते हैं। परन्तु दूध की कमी, दूध की गुणवत्ता में कमी एवं सूखने के पश्चात (ड्राई काउ) थन की आंशिक या पूर्णरूपेण क्षति हो जाती है, जो अगले बियान के प्रारंभ में प्रकट होती है। इस प्रकार अदृश्य रोग को समय रहते पहचानने के लिए निम्न प्रकार के उपाय किए जा सकते हैं:

- पी.एच. पेपर द्वारा दूध की समय-समय पर जांच या संदेह की स्थिति में विस्तृत जांच।
- कैलिफोर्निया मॉस्टाईटिस सोल्यूशन के माध्यम से जांच।
- संदेह की स्थिति में दूध कल्चर एवं सेंसिटिविटी जांच।

रोकथाम/बचाव

थनैला रोग की रोकथाम प्रभावी ढंग से करने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक हैः

- दुधारू पशुओं के रहने के स्थान की नियमित सफाई जरूरी है।
- फिनाइल के घोल तथा अमोनिया कम्पाउंड का छिड़काव करना चाहिए।
- दूध दुहने के पश्चात थन की यथोचित सफाई के लिए लाल पोटाश या सेवलोन का प्रयोग किया जा सकता है।
- दुधारू पशुओं में दूध बन्द होने की स्थिति में ड्राई थेरेपी द्वारा उचित इलाज कराया जाना चाहिए।
- थनैला होने पर तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह से उचित ईलाज कराया जाये।
- दूध की दुहाई निश्चित अंतराल पर की जाये।
- इसके अलावा पशुओं का उचित रखरखाव और थन की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाली औषधियों का प्रयोग करना श्रेयस्कर है।

लंगड़िया

यह रोग गाय-भैंसों में क्लास्ट्रीडियम चौबाई नामक जीवाणु के कारण होता है। इसका प्रकोप बरसात के समय अधिक होता है। यह विशेषकर छोटी आयु, दो वर्ष से कम उम्र के पशुओं में होता है। मुख्य रूप से यह रोग लंगड़ी रोग के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें साधारण ज्वर तथा मांसल भाग का दर्दयुक्त सूजन एवं लंगड़ापन प्रमुख लक्षण हैं। प्रौढ़ तथा स्वस्थ पशु ज्यादा प्रभावित होते हैं।

लक्षण

हल्का ज्वर (105^0 फारॅनहाइट तक), सुस्ती तथा बैठे रहने की प्रवृति/रीढ़ अथवा गर्दन अथवा दोनों जगह में झुकाव के साथ पशु खड़ा रहता है। बाद में पशु बैठ जाता है अथवा सोया रहता है। शरीर के किसी भी मांसल भाग में दर्दयुक्त गर्म सूजन पायी जाती है। पैर, पीठ तथा नितंब पर इस प्रकार की सूजन ज्यादा देखी जाती है। बाद में यह सूजन ठंडा तथा दर्दहीन होकर समाप्त हो जाता है। इस भाग को दबाने पर कुचकुचाहट की आवाज होती है, मानो पुराने कागज को हथेलियों के बीच कुचला जा रहा हो।

मृत्यु दरः 80-100 प्रतिशत।

उपचार

पेनिसिलीन, सल्फोनामाइड, ट्रेटासाइक्लीन ग्रुप के एंटीबायोटिक्स का सपोर्टिव औषधि के साथ उपयोग, रोग की तीव्रता तथा पशु की स्थिति के अनुसार लाभकारी है। सूजन वाले भाग का सेंक अलाभकारी है। सूजन वाले भाग में चीरा लगाकर 2 प्रतिशत हाइड्रोजन पेरोक्साइड तथा पोटेशियम परैंनेट से ड्रेसिंग किया जाना लाभकारी है।

रोकथाम/बचाव

- पशुशाला को साफ रखें
- समय पर टीका लगवायें
- रोग से ग्रसित पशुओं को अलग रखें

पशुओं में लीवर-फ्लूक

यह एक परजीवी रोग है। यह रोग पशुओं में एक प्रकार के परजीवी (फैसिओला) से होता है। ये अपने जीवन का कुछ समय नदी, तलाब, पोखर आदि में पाये जाने वाले घोंघा में व्यतीत करते हैं और शेष समय पशुओं के शरीर (यकृत) में। घोंघा से निकलकर इस परजीवी के लार्वा नदी, पोखर, तालाब के किनारे वाली घास की पत्तियों पर लटके रहते हैं। पशु जब इस घास के संपर्क में आते हैं, तो ये परजीवी पशुओं के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। शरीर के विभिन्न आंतरिक अंगों में भ्रमण करते हुए अंततः ये अपना स्थान पशु के यकृत तथा पित्त की थैली में बना लेते हैं। पशुओं का यकृत जैसे-जैसे प्रभावित होता है, वैसे-वैसे रोग के लक्षण प्रकट होते जाते हैं। रोग की तीव्रता यकृत के नुकसान की व्यापकता पर निर्भर करती है।

लक्षण

भूख में कमी का होना शरीर का क्षीण होते जाना, कभी-कभी बदबूदार बुलबुले के साथ पतला दस्त, घेघ फूल जाना, उठने में कठिनाई, उत्पादन क्षमता में कमी होना। समय पर उचित इलाज न होने पर पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

उपचार

शुरू से ही सतर्कता बरतने पर पशु आसानी से ठीक हो जाते हैं। पशु चिकित्सक के परामर्श से रोगग्रस्त पशु का इलाज करायें। कृमिनाशक दवा विशेषकर ऑक्सीक्लोजानाइड (1 ग्राम प्रति 100 कि.ग्रा. पशु वजन के लिए) का प्रयोग करना चाहिए। दवा सुबह भूखे/खाली पेट खिलायी/पिलायी जानी चाहिए। इस दवा का व्यवहार पशुओं के गर्भावस्था के दौरान भी बिना किसी विपरीत प्रभाव के किया जा सकता है। साल में दो बार, प्रत्येक बार में 15 दिनों के अंतर पर दो खुराक दवा का प्रयोग करना चाहिए। बाढ़ प्रभावित तथा जल जमाव वाले क्षेत्रों के पशुपालकों को इस रोग से अधिक सतर्क रहने की जरूरत है।

संक्रामक रोगों एवं परजीवियों से बचाव के लिए सारणी में टीकाकरण एवं सर्वांग स्नान की वार्षिक अवधि दी जा रही है, जिसका उपयोग कर पशुपालक किसी भी हानि से अपने पशुओं को सुरक्षित व स्वस्थ रख सकते हैं।

सारणीः **गोवंशीय पशुओं में टीकाकरण, कृमिनाशन एवं सर्वांग नहलाने (डिपिंग) के लिए वार्षिक चक्र**

कार्य विवरण	**उपचार की विधि**	**रक्षक दवा लगाने के समय पशु की आयु सीमा**	**सुरक्षा अवधि**
टीकाकरण			
(क) एफ.एम.डी.	पशु की खाल के नीचे	3 माह से ऊपर के पशु	6 माह तक
(ख) एच.एस.	पशु की खाल के नीचे अथवा	6 माह से ऊपर के पशु	6 माह तक
(ग) बी.क्यू.	शरीर के मांस वाले भाग में उत्पादक कम्पनी के निर्देशानुसार	6 माह से ऊपर के पशु	माह तक
कृमिनाशन पेट के कीड़ों का नाशक	मानसून (वर्षा ऋतु) शुरू होने से पहले (जून-जुलाई) व बाद में(अक्टूबर) में पिलायें	सभी आयु वर्ग के पशु	वर्ष में दो बार प्रथम व द्वितीय खुराक देने से पेट के कीड़ों से पशु को बचाया जा सकता है।
सर्वांग स्नान(डिपिंग जुओं, किलनी, माइट आदि से बचाव के लिए	प्रथम बार माह जुलाई एवं दूसरी बार अक्टूबर में नहलायें	सभी आयु वर्ग के पशु, नवजात पशुओं को छोड़कर	वर्ष में दो बार डिपिंग कराने से पशु को बाह्य परजीवियों के प्रकोप से बचाया जा सकता है।

पशपुालक उपरोक्त सारणी के अनसुार स्वास्थ्य प्रबंधन करके अपने पशुओं को स्वस्थ एव सुरक्षित रख सकते हैं तथा भारी आर्थिक हानि से बच सकते हैं।

पशुओं में डेगनाला रोग

मुख्यतः यह रोग भैंस प्रजाति के पशुओं में होता है। गोवंश के पशु भी इस संक्रमण के शिकार होते हैं। इस रोग का निश्चित कारण अभी तक ज्ञात नहीं है, परन्तु डेगनाला एक फफूंदजनित रोग है।

लक्षण

इस रोग में पशुओं के कान, पूंछ एवं खुर सूखने लगते हैं और अंततः सड़ कर गिर जाते हैं। पशु भोजन करना बंद कर देता है एवं दिनों-दिन कमजोर होता जाता है। अधिक नमीयुक्त पुआल या भूसा खिलाने से यह रोग आमतौर पर पशुओं में होता है।

रोकथाम/बचाव

- पशुओं को फफूंदी लगा हुआ चारा-दाना एवं भूसा नहीं खिलायें।
- पुआल को पानी से धोकर खिलायें। पशुओं को स्वच्छ जगह पर रखें।
- नियमित रूप से मिनरल मिक्सचर दें।
- गोशालाओं में नियमित रूप से फिनाइल एवं चूने के पानी का छिड़काव करें।
- शरीर के संक्रमित भाग को नीम की पत्तियों को पानी में उबालकर उसी पानी से घाव को साफ करें। इसके बाद एंटीसेप्टिक मलहम लगाएं एवं अधिक समय तक क्रियाशील रहने वाले एंटीबायोटिक का प्रयोग करें।

स्त्रोत: खेती पत्रिका, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद(आईसीएआर), लेखक : अरविन्द कुमार त्रिपाठी पशु औषधि विज्ञान विभाग, पशु चिकित्सा संकाय पंडित दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गौ अनुसंधान संस्थान, (दुवासु), मथुरा (उत्तरप्रदेश)।

© 2006–2019 C–DAC.All content appearing on the vikaspedia portal is through collaborative effort of vikaspedia and its partners.We encourage you to use and share the content in a respectful and fair manner. Please leave all source links intact and adhere to applicable copyright and intellectual property guidelines and laws.